**Review Of Research**
**Vol. 1, Issue. 9, June. 2012**
**ISSN:- 2249-894X**
Available online at www.lbp.world

ORIGINAL ARTICLE

# बाल विकास का एक समीक्षात्मक अध्ययन

**कुमारी अंजना रमण[1] , डॉ. सरोज चौधरी[2]**
**[1]शोधार्थी , ल0ना0मि0वि0वि0,दरभंगा ,**
**[2]व्याख्याता, स्माजशास्त्र विभाग , एम0के0 कॉलेज, ल0सराय,दरभंगा.**

**सारः**

बचपन को जीवन का एक बहुत ही महत्वपूर्ण अंग माना जा सकता है। ऐसा विचार लगभग सभी मनोवैज्ञानिकों का है कि व्यक्तिगत और सामाजिक अनुकूलन के लिए जीवन के पहले कुछ वर्ष सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण होते हैं। सम्पूर्ण जीवन का आधार शैशवावस्था में ही तैयार हो जाता है।

**प्रस्तावनाः**

प्रारंभिक बचपन में ही व्यक्ति की प्रवृत्तियों तथा स्वभाव की नींव पड़ जाती है। बालक के भावी जीवन को बचाने के लिए उसके बचपन पर विशेष ध्यान देना अत्यन्त जरूरी है। व्यक्ति को उसके बचपन में ही बहुत सारी बातें सिखायी जा सकती हैं और उसमें विविध बदलाव लाये जा सकते हैं। लेकिन बडत्रे होने पर उसमें बदलाव लाना बहुत ही कठिन हो जाता है। इसलिए सभी मनोवैज्ञानिक तथा शिक्षा विशेषज्ञ बालक की शिक्षा पर अधिक जोर देते हैं।

'बाल–विकास' में दो शब्द हैं–बाल और विकास। बाल का अर्थ होता है बालक और विकास का अर्थ परिवर्तन की ऐसी प्रक्रिया से है जिसमें गुणात्मक और परिणामात्मक दोनों प्रकार के परिवर्तन संबंध होते हैं।[1]

इस विषय में एल.ई. टेलर ने कहा है, ''मनुष्य में जो कुछ वह अभी है, उससे बदल कर कुछ भिन्न हो जाने की जीवन के प्रत्येक क्षण प्रक्रिया चलती रहती है। उसकी समस्त शैली बदल रही है और एक ही समय में शैली एवं परिवर्तन के तथ्य, दोनों को ध्यान में रखना आवश्यक है। किसी विशेष अवस्था में शैली क्या होगी, यह पहली शैली तथा उस व्यक्ति पर, उसके वर्तमान द्वारा डाले गये प्रभावों पर निर्भर है। साथ ही यह उसकी अपनी अनुक्रियाओं पर निर्भर है, उन बातों के प्रति भी जो पहले हो चुकी है तथा उन प्रभावों के प्रति भी जो अब उस पर पड़ रहे हैं। कोई भी व्यक्ति किसी हद तक क्रमिक अवस्थाओं में अपनी जीवन शैली का निर्माण अपनी पसन्दों तथ निर्णयों द्वारा करता है। एक बार चुनाव हो जाने पर तथा उस चुनाव का प्रभाव विकसित हो रहे ढ़ाँचे पर पड़ चुकने के बाद वह कभी भी मिटाया नहीं जा सकता। विकास एक–मार्गी (One-way) पथ है।'' आज के युग में ज्ञान–विज्ञान के विकसित होने का कारण मानव विकास को लिपिबद्ध कर लिया गया है। मानव विकास के इतिहास में ज्ञान–विज्ञान की अनेक नई शाखाओं का विकास हुआ है। मनोविज्ञान भी व्यक्ति के गर्भ में आने से लेकर मृत्यु तक के विकास के अनेक नवीन पहलुओं को प्रस्तुत करता है।[2]

गर्भाधान से लेकर प्रसव तक भ्रूण शिशू में अनेक प्रकार के परिवर्तन होते हैं। इस परिवर्तन को भ्रूणावस्था का शारीरिक विकास माना जाता है। जन्म के बाद उसमें कुछ विशिष्ट परिवर्तन होते हैं; यथा–गति, भाषा, संवेग एवं सामाजिकता आदि। विकास का यह क्रम वातावरण से प्रभावित होता है।

हर व्यक्ति के लिए यह जरूरी है कि वह सफलता प्राप्त करने के लिए बालक के विकास की विभिन्न अवस्थाओं का ज्ञान प्राप्त करें। इन अवस्थाओं के कारण बालक में होने वाले परिवर्तनों के अनुसार वह अपनी कार्य–प्रणाली को विकसित कर सकता है।

व्यक्ति का जन्म, विकास एवं मृत्यु सदा से ही मानव के लिए जिज्ञासा का विषय रहा है। अब विकास का अध्ययन मानव व्यवहार की पूर्णता को जानने के लिए होने लगा है इससे इसका महत्व और भी बढ़ गया। आज व्यक्ति के विकास की विभिन्न अवस्थाओं का ज्ञान प्राप्त करना अनेक नवीन पहलुओं का अध्ययन करने के लिए आवश्यक हो गया है।[3]

व्यक्ति के विकास का आशय उसके गर्भ में आने से लेकर पूर्ण प्रौढ़ता प्राप्त होने तक की स्थिति से है। मुनरो ने विकास की परिभाषा देते हुए कहा है–'' परिवर्तन श्रृंखला की वह अवस्था है जिसमें बच्चा भ्रूणावस्था से लेकर प्रौढ़ावस्था तक गुजरता है, विकास कहलाता है।''

गैसल (Gessel) के अनुसार, ''विकास सामान्य प्रयत्न से अधिक महत्व की चीज है। विकास का अवलोकन किया जा सकता है एवं किसी सीमा तक इसका मूल्यांकन एवं मापन भी किया जा सकता है। इसका मापन तथा मूल्यांकन तीन रूपों में हो सकता है–(i) शरी निर्माण, (ii) शरीर शास्त्रीय, (iii) व्यावहारिक व्यवहार चिन्ह् विकास के स्तर एवं शक्तियों की विस्तृत रचना करते हैं।''

**विकास का आशयः**

विकास का अर्थ बढ़ना नहीं है। विकास का अर्थ है बदलाव। बदलाव एक ऐसी प्रक्रिया है जो अविरल, क्रमिक और निरंतर चलती रहती है। इसलिए हर क्षण विकास हो रहा है। इस संदर्भ में हरलॉक का मत है, ''विकास बड़े तक ही सीमित नहीं है। वस्तुतः यह तो व्यवस्थित और समानुगत प्रगतिशील क्रम है जो परिपक्वता प्राप्ति में सहायक होता है।''

विकास चिन्तन का मूल आधार है। यह एक बहुमुखी क्रिया है एवं इसमें केवल शरीर के अंगों के विकास का ही नहीं बल्कि सामाजिक और सांवेगिक अवस्थाओं में होने वाले परिवर्तनों को भी सम्मिलित किया जाता है। इसी के अन्तर्गत शक्तियों और क्षमताओं के विकास को भी गिना जाता है। हेनरी सीसल वील्ड ने विकास के सन्दर्भ में अपना विचार इस तरह व्यक्त किया है–(क) विकास के कारण और उसकी प्रक्रिया, किसी क्रिया में निहित प्रक्रिया, (ख) मानव मस्तिष्क में सभ्यता की, प्राणी के जीवन के विकास की अवस्था या विकास की वह प्रक्रिया जो अभिवृद्धि, प्रसार आदि में योग देने की स्थिति में हो; (ग) विकास की प्रक्रिया का परिणाम जो अनेक कारण दर्शायें, वर्ग–भेद आदि सामाजिक समस्याओं के रूप में प्रकट होते हैं।''

जेम्स ड्रेवर ने विकास के विषय में इस तरह से अपना विचार व्यक्त किया है–'' विकास वह दशा है जो प्रगतिशील परिवर्तन के रूप में प्राणी में सतत् रूप से व्यक्त होती है। यह प्रगतिशील परिवर्तन किसी भी प्राणी में भ्रूणावस्था से लेकर प्रौढ़ावस्था तक होता है। यह विकास तन्त्र को सामान्य रूप में नियंत्रित करता है। यह प्रगति का मानदण्ड है और इसका आरंभ शून्य से होता है।''

बालक के विकास का स्वरूप दो सामान्य कारकों से प्रभाविता होता है। (i) बालक के पिता के पितृ–सूत्रों (Germeells) की रचना तथा वंशक्रम, (ii) गर्भ स्थिति के बाद पड़नेवाले प्रभाव। जैविक वंशक्रम तथा सामाजिक वंशक्रम की प्रक्रिया में अनेक छोटे–मोटे कारक–प्रतिकारक विद्यमान रहते हैं। पितृ–सूत्रों पर पड़ने वाले प्रभावों से बालक की विकास प्रक्रिया प्रभावित होती है। विकास के जैविक स्वरूप की व्याख्या जीवन–प्रतिमान (Life-pattern) के संदर्भ में सभी अवस्थाओं में की जानी चाहिए। विकास, सर्वांगीण पख (Alround aspect) को लेकर चलता है। इसमें किसी एक पहलू का अध्ययन पृथक् रूप से नहीं किया जा सकता।

1. **विकास का परिपक्वता से सम्बन्ध**–अभिवृद्धि (Growth) का सम्बन्ध शारीरिक तथा मानसिक परिपक्वता (Maturation) विकास वातावरण से भी संबंधित है। एक विचार यह भी है कि विकास प्राणी में होनेवाले कुल परिवर्तन का योग है जबकि अभिवृद्धि किसी विशेष पक्ष अथवा आंशिक स्वरूप को ही व्यक्त करती है, परन्तु हम यह स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि अभिवृद्धि तथा विकास (Growth and Development) एक दूसरे के पूरक दो शब्द हैं।
2. **समान प्रतिमान नहीं**–अभिवृद्धि में विकास का प्रतिमान समान नहीं होता। अभिवृद्धि में व्यक्तिगत भेद पाये जाते हैं। प्रत्येक बालक की अभिवृद्धि भिन्न होती है। विकास के पदों में समानता पाई जाती है, परन्तु इसकी दर, सीमा तथा भिन्नत में अन्तर होता है। अभिवृद्धि पर

वातावरण से संबंधित कारकों का प्रभाव पड़ता है। अभिवृद्धि पर यह प्रभाव लाभप्रद है अथवा हानिप्रद, यह वातावरणीय कारकों पर निर्भर करता है। व्यक्ति अपने वातावरण के प्रति प्रतिक्रिया व्यक्त करता है और परिपक्वता के विकास का सीधा सम्बन्ध अभिवृद्धि से है।

3. **व्यवस्थित पक्ष**– जहाँ तक विकास का संबंध है, वह एक व्यवस्थित पहलू है। यह एक प्रक्रिया है जिसमें आन्तरिक शारीरिक परिवर्तनों एवं मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं द्वारा उद्दीप्त परिवर्तन का अध्ययन किया जाता है। एन्डरसन (Anderson) ने विकास को शारीरिक परिवर्तन ही नहीं माना अपितु वह इसे संरचना (Structure) एवं प्रकार्य (Function) को समन्वित करने की प्रक्रिया के रूप में स्वीकार करता है।

खोजपूर्ण अध्ययन उत्तरोत्तर अधिक संख्या में प्रकाशित होने लगे और दूसरे महायुद्ध के बाद प्रौढ़ावस्था तथा जीवन के उत्तरकालीन वर्षो पर अधिक से अधिक ध्यान दिया जाने लगा।

विकास की प्रक्रिया में बालक का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अभिभावक, शिक्षक, समाज सुधारक, राजनेता, सभी की आवश्यकताओं का केन्द्र बालक होता है। माता–पिता बालक को ईश्वर की देन मानते हैं और आशा करते हैं कि वह पूर्वजों की भाँति शौर्य तथा कीर्ति का प्रदर्शन करें एवं मोक्ष प्राप्ति में सहायक बने। शिक्षक चाहता है– बालक समाज का उपयोगी अंग बने, समाज सुधारक उसमें ऐसे गुणों तथा कौशलों के दर्शन करना चाहता है जिनसे समाज में सामाजिक कुशलता का निर्माण हो सके। इसी प्रकार राजनेता, राष्ट्र के कुशल नेतृत्व के दर्शन बालक में करता है।

अब यह समझा जाने लगा है कि बाल मनोविज्ञान के स्थान पर बाल विकास नाम को प्रचलित किया जाये। बाल मनोविज्ञान में बालक के व्यवहार का अध्ययन किया जाता है किन्तु विकास के अन्तर्गत उन सभी तथ्यों तथा घटकों का अध्ययन किया जाता है जो बालक के व्यवहार को निश्चित स्वरूप प्रदान करते हैं। आरंभ में बाल मनोविज्ञान के अन्तर्गत शिशुओं तथा बालकों की समस्याओं के पृथक–पृथक अध्ययन किये गये। इसमें अध्ययन को पूर्णता नही मिली हरलॉक ने इस संबंध में कहा है–''बाल मनोविज्ञान का नाम बाल विकास इसलिए बदला गया है कि अब बालक के विकास की समस्त प्रक्रियाओं पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है, किसी एक पक्ष पर नहीं।''

**बाल विकास की अवधारणा**–

**वृद्धि एवं विकास**– ये दोनों शब्द प्रायः बिना कोई भेदभाव किए पर्यायवाची रूप में काम में लाए जाते हैं। दोनों यह प्रकट करते हैं कि गर्भाधान के समय से किसी विशेष समय तक किसी प्राणी में कितना कुछ परिवर्तन आया है। इस परिवर्तन कि प्रक्रिया में वातावरण की शक्तियों और शिक्षा का बहुत हाथ है। इनकी कृपा से हमारे व्यक्तित्व के सभी पहलुओं–शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक नैतिक आदि– में सब ओर से वृद्धि एवं विकास होता है। इस तरह से वृद्धि और विकास दोनों शब्दों का प्रयोग मोटे तौर पर किसी भी प्रकार के सीखने अथवा स्वतः उसके साथ आनेवाले परिवर्तनों के लिए किया जाता है और इसीलिए यह आवश्यक रूप से वंशानुकूल और वातावरण की सम्मिलित उपज कही जाती है।

अगर सूक्ष्म प्रेषण किया जाय तो वृद्धि और विकास दोनों के बीच बहुत अन्तर दिखलाई पड़ सकता है। इस अन्तर को अग्रलिखित बिन्दुओं से व्यक्त किया जा सकता है–

1. वृद्धि शब्द तादाद या परिणाम संबंधी परिवर्तनों के लिए प्रयुक्त होता है। उदाहरण के लिए बच्चे के बड़े होने के साथ आकार, लम्बाई, ऊँचाई और भार आदि में होनेवाले परिवर्तन को वृद्धि कहकर पुकारा जाता है। लेकिन, विकास शब्द वृद्धि की तरह केवल परिमाण संबंधी परिवर्तनों को व्यक्त न कर ऐसे सभी परिवर्तनों के लिए प्रयुक्त होता है जिससे बालक की कार्यकुशलता, कार्यक्षमता और व्यवहार में प्रगति होती है।
2. वृद्धि एक तहर से सम्पूर्ण विकास प्रक्रिया का एक सोपान है। वृद्धि विकास के परिणाम और तादाद संबंधी एक पक्ष। लेकिन, विकास शब्द स्वयं में एक विस्तृत अर्थ रखता है। वृद्धि इसका अंश मात्र है। यह व्यक्ति में होनेवाले सभी परिवर्तनों को प्रकट करता है।
3. वृद्धि शब्द विकास के शरीर के किसी भी अवयव और व्यवहार के किसी भी पहलू में होनेवाले परिवर्तनों को प्रकट कर सकता है। लेकिन, विकास किसी एक अंग–प्रत्यंग में या व्यवहार के किसी

एक पहलू में होनेवाले परिवर्तनों को नहीं, बल्कि व्यक्ति में आनेवाले सम्पूर्ण परिवर्तनों को इकट्ठ रूप में व्यक्त करता है।

4. वृद्धि की क्रिया आजीवन नहीं चलती। बालक द्वारा परिपक्वता ग्रहण करने के साथ–साथ यह समाप्त हो जाती है। लेकिन, विका एक सतत् प्रक्रिया है। वृद्धि की तरह बालक के परिपक्व होने पर समाप्त न होकर यह आजीवन चलती है।
5. वृद्धि के फलस्वरूप होनेवाले परिवर्तन बिना कोई विशेष प्रयास किये दृष्टिगोचर हो सकते हैं। साथ ही इन्हें भली–भाँति मापा भी जा सकता है। लेकिन, विकास शब्द कार्यक्षमता, कार्य–कुशलता और व्यवहार में आनेवाले गुणात्मक परिवर्तनों को भी प्रकट करताहै। इन परिवर्तनों को प्रत्यक्ष रूप में मापना कठिन है। इन्हें केवल अप्रत्यक्ष तरीकों जैसे व्यवहार करते हुए बालक का निरीक्षण करना आदि से ही मापा जा सकता है।
6. वृद्धि के साथ–साथ सदैव विकास होना भी आवश्यक नहीं है। मोटापे के कारण एक बालक के भार में वृद्धि से उनकी कार्यकुशलता में कोई वृद्धि नहीं होती और इस तरह से उसकी वृद्धि, विकास को साथ लेकर नहीं चलती है। लेकिन, दूसरी ओर, विकास भी वृद्धि के बिना संभव हो सकता है। कई बार यह देखा जाता है कि कुछ बच्चों की ऊँचाई, आकार एवं भार में समय गुजरने के साथ–साथ कोई विशेष परिवर्तन नही दिखाई देता; परन्तु उनकी कार्यक्षमता तथा शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक और सामाजिक योग्यता में बराबर प्रगति होती रहती है।

इस तरह से बारीकी से देखने पर वृद्धि और विकास दोनों प्रक्रियाओं में पर्याप्त अन्तर दिखाई पड़ता है। लेकिन सामान्य रूप से व्यक्ति विशेष में होनेवाले सभी परिवर्तनों को व्यक्त करने के लिए हम दोनों का बिना कोई भेदभाव किए प्रयोग करते रहते हैं। श्रीमती हरलौक के अनुसार मानव जीवन के सामाजिक, शारीरिक, संवेगात्मक, बौद्धिक आदि पहलुओं से संबंधित इन सभी परिवर्तनों को चार प्रमुख वर्गो में रखा जा सकता है–

1. पुराने लक्षण लुप्त होना
2. नए लक्षण प्रकट होना
3. आकार में परिवर्तन
4. अनुपात में परिवर्तन

इन सभी प्रकार के परिवर्तनों के परिमाणात्मक और गुणात्मक दोनों ही पहलू हैं। इसलिए सामान्यतया वृद्धि और विकास की प्रक्रिया लगभग साथ–साथ चलती है और यही कारण है कि ये दोनों शब्द समानार्थक रूप में प्रयुक्त होते हैं। गर्भाधान के पश्चात् बालक में जो कुछ भी शारीरिक और व्यवहार संबंधी परिवर्तन होते हैं, उन्हें व्यक्त करने के लिए इन दोनों को सम्मिलित रूप से प्रयोग में लाया जाता है।

**बाल विशेषताओं के अध्ययन के प्रमुख सिद्धान्त–**

जब हम किसी भी व्यक्ति के विकास की चर्चा करते हैं तो हमारा आशय उसकी कार्यक्षमता, परिपक्वता तथा शक्ति ग्रहण करने से होता है। इसलिए विकास के सामान्य सिद्धान्तों पर विचार करते समय हमें इन सिद्धान्तों पर विशेष ध्यान देना होगा।

1. **मूल–प्रवृत्यात्मक अभिगमन**–विकास के संदर्भ में मैकडूगल (McDougal) ने मूल प्रवृत्यात्मक व्यवहार का विश्लेषण किया है। मैकडूगल ने नारियों में मातृत्व मूल–प्रवृत्ति (Material instinct) बताई और इस बात पर बल दिया कि उनका विकास इस मूल प्रवृत्ति के आधार पर होता है यदि मूल प्रवृत्ति का प्रयोग केवल जटिल व्यवहारों के प्रतिमानों के लिए होता है और ये प्रतिमान विकास को प्रभावित करते हैं तो हम यह मान सकते हैं कि इनके अभाव में सीखने की क्रिया सम्पन्न नहीं हो सकती। क्लार्क एवं बीर्च (Clark and Birch) ने नर चिम्पाँजी के शरीर में स्त्री–हारमोन (Female harmones) प्रवेश कराये और इसके परिणामस्वरूप उसमें आज्ञापालन तथा सामाजिक प्रभुत्व के गुण आ गये। इसका कारण यह है कि मनुष्य का व्यवहार किन्हीं ग्रन्थियों (Glands) के विकास तथा उनकी रासायनिक क्रिया से प्रभावित होता है।

2. **सहज क्रिया अभिगमन**– बाटमन का कहना है कि सभी बालक जन्म के समय समान होते हैं। उनकी निश्चित शारीरिक रचना होती हे, उनमें कुछ सहज क्रियायें होती हैं एवं संवेग (Emotion) होते हैं–प्रेम, भय और क्रोध। इनके अतिरिक्त कुछ अधिग्रहणात्मक (Manipulative) प्रवृत्तियाँ होती है। वातावरण के अनुसार बालक इनका प्रयोग करता है और वही उनकी अनुक्रिया होती है। यह सहज क्रिया ही बालक के विकास की ओर संकेत करती है।
3. **परिपक्वता का सिद्धान्त**–जब व्यक्ति अपनी आन्तरिक शक्तियों एवं वातावरण के प्रति कुशलतापूर्वक प्रतिक्रिया करता है, जब हम यह मान लेते हैं कि वह किन्हीं विशिष्ट क्रियाओं को करने में सक्षम अथवा परिपक्व हो गया है। परिपक्वता में सामान्यतः स्थायित्व आ जाता है। यह स्थायित्व कद, व्यक्तित्व निष्पत्ति आदि में होता है जिनका प्रभाव अन्ततः बालक के सीखने की क्षमता पर पड़ता है। परिपक्वता एवं सीखना या अधिगम, विकास के दो पहलू हैं। ये एक दूसरे से इतने जुड़े हैं कि इनको अलग नहीं किया जा सकता। परिपक्वता की क्षमता पर वंशक्रम तथा वातावरण का भी प्रभाव पड़ता है।

**बाल विशेषताओं के अध्ययन के कुछ विशिष्ट सिद्धान्त**–

बाल विशेषताओं के अध्ययन के प्रमुख सिद्धान्त अग्रलिखित हैं–

1. **मस्तकोधमुखी सिद्धान्त**–इस मत के अनुयायियों का कथन है कि विकास की क्रिया का आरंभ सिर से होता है। भ्रूणावस्था में भी पहले सिर का ही विकास होता है। सिर के पश्चात् धड़ एवं टाँगों आदि का विकास होता है। जन्म के पश्चात् भी पहले बालक अपने सिर को इधर–उधर घुमाता है तथा उसे ऊपर उठाने का प्रयत्न करता है। बैठने तथा चलने की प्रक्रिया वह बाद में करता है। यह सिद्धान्त शारीरिक विकास की प्रक्रिया पर आधारित है।
2. **निकट–दूर सिद्धान्त**– इस मत के मानने वालों का कहना है कि विकास का केन्द्र–बिन्दु स्नायुमण्डल होता है। पहले स्नायुमण्डल का विकास होता है, इसके पश्चात स्नायुमण्डल के निकट के भागों का विकास होता है जैसे हृदय, छाती, कुहनी आदि। इसके पश्चात् अंगुलियों आदि का विकास होता है।
3. **संगठित प्रक्रिया**–बालक के विकास से अभिप्राय केवल शारीरिक विकास से नहीं है। शारीरिक विकास के साथ–साथ मानसिक, संवेगात्मक, सामाजिक विकास भी होने से व्यक्तित्व में पूर्णता आती है। इसीलिए ओलसन एवं ह्यूज (Olson and Hughes) ने आवयविक (Organistic) आयु का विचार विकसित किया है। इस विचार के अनुसार शारीरिक दृष्टि से कोई बालक 8 वर्ष का है तो वह मानसिक दृष्टि से 12 वर्ष का हो सकता है। संवेगात्मक दृष्टि से वह 14 वर्ष का हो सकता है। अतः विकास को आयु की किसी एक सीमा में नहीं बाँधा जा सकता है। वह तो एक संगठित प्रक्रिया है।
4. **अन्तर का सिद्धान्त**– विकास की गति समान नहीं होती। यह गति जीवन भर चलती रहती है परन्तु इसके स्वरूप भिन्न–भिन्न होते हैं। विकास की गति शैशव में तीव्र होती है। बाल्यावस्था में गति धीमी होती है और किशोरावस्था में यह तीव्र होती हुई पूर्णता प्राप्त करती है। लड़कों तथा लड़कियों का विकास भी समान ढ़ंग से नहीं होता। उसमें भी भिन्नता पाई पाती है।
5. **अनवरत प्रक्रिया**– विकास की प्रक्रिया गर्भाधान से मृत्यु पर्यन्त तक चलती रहती है। सच यह है कि अनवरत् प्रक्रिया है जिसमें प्रत्येक प्राणी को गुजरना पड़ता है। व्यवहार का आधार प्रतिक्षण बदलता रहता है और व्यवहार परिवर्तन से ही विकास की गति की पहचान की जाती है।
6. **विकास प्रक्रिया के समान प्रतिमान**– इस बात के माननेवालों को कथन है कि समान प्रजाति (Race) में विकास की गति समान प्रतिमानों से प्रवाहित होती है। मनुष्य चाहे अमेरिका में पैदा हुआ हो या भारत में, उसका शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक भाषा आदि का विकास अन्य व्यक्तियों के समान होता है।
7. सामान्य से विशिष्ट की ओर–इस सिद्धान्त के अनुसार बालक का विकास सामान्य परिस्थिति से होता है। धीरे–धीरे यह विकास विशिष्ट स्थिति की ओर होता है। आरंभ में बालक पूरे हाथ का संचालन करता है। धीरे–धीरे वह अंगुलियों पर भी नियंत्रण कर लेता है। इसी प्रकार संबंधों का

विकास होता है। आरंभ में वह केवल उत्तेजना अनुभव करता है। कालान्तर में वह संवेगों की अभिव्यक्ति करना सीख लेता है। भाषा का विकास भी क्रन्दन से आरंभ होता है। निरर्थक–सार्थक शब्दों के माध्यम से वह वाक्यों के विकास तक पहुँचता है।

## बाल–विकास की प्रमुख विशेषतायें–

विकास के सामान्य तथा विशेष सिद्धान्तों का अध्ययन करने से एक प्रमुख बात स्पष्ट होती है; वह है–विकास की प्रक्रिया अपनी कुछ विशेषताओं को लेकर आगे बढ़ती है। इसमें हमें यह ज्ञात होता है (i) प्रत्येक बालक से उसकी विकास की अवस्था पर क्या संभावना हो सकती है, (ii) विकास की इन अवस्थाओं पर व्यवहार का कौन–सा रूप विकसित होता है, (iii) बालक की आयु, कद, भार एवं मानसिक विकास के अनुसार उसके लिए मार्ग–दर्शन की संभावनाओं का विकास कर सकते हैं।
विकास प्रक्रिया के दौरान ये विशेषतायें प्रकट होती हैं–

1. **विकास की घोषणा**– विकास की गति का स्वरूप क्या होगा। इन सब की घोषणा करना संभव है। बालक की कलाई के एक्सरे चित्र द्वारा उसके भावी आकार की घोषणा की जा सकती है। बालक के विकास की गति से उसी के आधार पर भावी आयोजना की जा सकती है।
2. **विकास का निश्चित प्रतिमान**– विकास जिस भी स्वरूप में होता है, उसका निश्चित प्रारूप होता है। देखने में हमें वह भले ही अव्यवस्थित लगता हो परन्तु वह निश्चित क्रम में उभरता है। गैसल ने इसे प्रकृति का नियम माना है।
3. **विकास में विशिष्टता पाई जाती है**– विकास की प्रत्येक अवस्था में कुछ संकुलों (Traits) का विकास होता है। फील्डमैन (Fieldman) के अनुसार–''मानव जीवन अनेक अवस्थाओं में गुजरता है, मानव जीवन गर्भीय–अवस्था से किसी भी अवस्था में कम नहीं है। प्रत्येक अवस्था में प्रभावशाली विशेषतायें उभरती हैं, उसमें विशिष्टतायें होती हैं। इसमें एकता तथा वैशिष्ट्य पाया जाता है।
4. **आकार तथा भार**– शारीरिक अभिवृद्धि के समय बालक के आकार तथा भार में परिवर्तन दृष्टिगत होता है। जैसे–जैसे बालक बढ़ता है, उसके शरीर के भार में, कद में व्यास में असामान्य वृद्धि होती हे। आन्तरिक अवयवों में हृदय, फेफड़े, आतें उदर आदि की अभिवृद्धि होती है। इसी प्रकार मानसिक विकास भी होता है।
5. **आकार तथा भार**–विकास की प्रक्रिया के मध्य बालक के शारीरिक विकास मं आनुपातिक परिवर्तन होता है। इसी आधार पर बालक लघु प्रौढ़ (Miniature Adult) के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। प्रौढ़ व्यक्ति के शरीर के अनुपात में इसकी वृद्धि होती है। बालक के मानसिक विकास में भी आनुपातिक परिवर्तन दिखाई देते हैं। बालक के रूचि, योग्यता, क्षमता, क्रियाशीलता में आनुपातिक परिवर्तन होता है।
6. **पुरानी रूपरेखा में परिवर्तन**–विकास के साथ–साथ बालक की शारीरिक रूप रेखा में परिवर्तन होते रहते हैं यह परिवर्तन जाँघ, दाँत, छाती आदि में थायमस तथा पीनियल ग्रंथियों के कारण होता है। चिन्तन, गतिशीलता, रेंगना, घुटनों के बल चलना, स्वाद, घ्राण शक्ति आदि में भी परिवर्तन होते हैं।
7. **नवीन रूपरेखा ग्रहण करना**– विकास प्रक्रिया के मध्य जहाँ पुरानी रूपरेखा समाप्त होती जाती है, वहाँ पर बालक का शरीर नवीन रूपरेखा ग्रहण करने लगता है। उसका शारीरिक स्वरूप नवीन रूप में उभरने लगता है। पुराने तथा नये दाँत निकालना, यौन विशेषताओं का उभरना आदि इसके उदाहरण हैं। विकास की विशेषताओं के संदर्भ में हैविंगहर्स्ट ने कहा है–''जब शरीर परिपक्व हो जाता है और व्यक्ति किसी भी कार्य को करने के लिए तैयार रहता है, समाज को उसकी आवश्यकता होती है। ऐसे समय में विकास प्रक्रिया में व्यक्ति नवीन ज्ञान तथा कौशल को सीखता है।''

बाल–विकास की इन विशेषताओं को संक्षेप में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है–

1. विकास एक निरंतर चलनेवाली क्रिया है।
2. विकास की दर में भिन्नता पाई जाती है।
3. शरीर के विभिन्न भागों का विकास भिन्न–भिन्न रूपों में होता है।
4. प्रत्येक व्यक्ति विकास की प्रक्रिया से होकर गुजरता है।
5. विकास का निश्चित स्वरूप होता है।
6. विकास के अधिकांश संकुल (Traits) पारस्परिक रूप से संबंधित होते हैं।
7. विकास की भावी घोषणा संभव है।
8. विकास की प्रत्येक अवस्था की अपनी विशेषता होती है।
9. हम जिन व्यवहारों को विकास की प्रक्रिया के दौरान असामान्य समझते हैं, वे सामान्य होते हैं।
10. विकास प्रकृति द्वारा निर्धारित क्रम से होता है।
11. विकास सामान्य से विशेष की ओर होता है।

## बाल–विकास के सिद्धान्त–

बाल–विकास के प्रमुख सिद्धान्त अग्रलिखित है–

**1. संज्ञानात्मक सिद्धान्त**– इस मत के प्रतिपादक जीन पियाजे (Jean Piaget) का जन्म 1896ई. में न्यूचैटल (Neuchatal) में हुआ था। इनके अपने विकास पर पागल माँ और बुद्धिमान पिता का प्रभाव पड़ा। पियाजे के विचारों पर प्राकृतिक विज्ञानों के साथ–साथ दर्शन तथा मनोविज्ञान का प्रभाव भी परिलक्षित होता है।

पियाजे का मत एक–पक्षीय (One Dimensional) है। यह मानव व्यवहार पर अधिक बल देता है। उसने अपने अध्ययन का आधार जीवशास्त्र (Biology) को बनाया। उसके अध्ययन का आरंभ सर्वेक्षण तथा अनुसंधान है। उसने विभिन्न प्रकार के प्राणियों का सर्वेक्षण करके आधारभूत सूचनायें एकत्र कीं। उसने इस आधार पर सार्वभौमिक नियम (Cosmos order) के दर्शन किये। विकास क्रम–विश्व भर से एक सा होता है और वह प्राकृतिक है। अलग–अलग प्राणियों में यह पृथक्–पृथक् रूप से पाया जाता है। उसने व्यक्तित्व के विकास में चेतन (Consciousness), अचेतन (Unconsciousness), पहचान (Identification), खेल (Play) संवेग (Emotion) आदि का प्रयोग बताया। उसके विचार में व्यक्ति परिवेश में विकसित आवश्यकताओं को पूर्ण करने की प्रक्रिया से ही विकास–पथ पर बढ़ता है। पियाजे के मत को संक्षेप में अग्रलिखित प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है–

(क) विकास की एक दिशा में होती है।
(ख) विकास के सभी पक्ष मानसिक स्तरों से संबंध होते हैं।
(ग) बालक और प्रौढ़ के व्यवहार में विभिन्नता आता है।
(घ) सभी प्रकार के परिपक्व व्यवहारों का मूल शैशवावस्था के व्यवहार में हैं।

पियाजे ने विकास के सिद्धान्त को इन्द्रियगति (Sensory Motor), संज्ञान की आरंभिक अवस्था संज्ञानावस्था में बाँटा है। आरंभ के 24 मासों में इन्द्रिय गति का विकास होता है। इसके बाद संज्ञानात्मक विकास होता है। इसी में चिन्तन, तर्क तथा कल्पना का विकास होता है। पियाजे द्वारा प्रतिपादित विकास की दर इतनी क्रमबद्ध है कि उसने कई नई धारणाओं को विकसित किया है।

1. विकास के सभी पक्ष समान क्रम में आगे बढ़ते हैं।
2. विकास की जटिल प्रक्रिया में विकास प्राकृतिक एवं मानसिक रूप से बढ़ता है।
3. हर प्रकार का विकास शुद्ध सामान्य समस्या से आरंभ होता है।
4. पहले शारीरिक, फिर सामाजिक तथा वैचारिक विकास होता है।
5. व्यक्तित्व के विकास में अहं (Ego) का योग प्रमुख रहता है।
6. बौद्धिक व्यवहार सक्रिय तथा निष्क्रिय रूप से विकसित होता है।
7. विकास स्थूल से सूक्ष्म की ओर होता है।
8. नैतिकता, न्याय एवं अवबोध का विकास सामाजिक पारस्परिकता से अधिक होता है।

9. विकास के समय पूर्व अवस्था में प्राप्त गुण एवं विशेषतायें उम्र भर साथ रहती हैं।

हेनरी डब्ल्यू. मेयर ने ठीक ही कहा है– ''पियाजे की विकासात्मक प्रवृत्तियाँ व्यक्ति की क्षमता का वर्णन करती है। इससे हम व्यक्ति की दशा, अवबोध के विस्तार आदि की घोषणा विकास के मध्य कर सकते हैं।''

**2. अधिगम सिद्धान्त**– विकास के अधिगम सिद्धान्त के प्रतिपादक रॉबर्ट रिचर्डसन सीयर्स (Robert Richardson Sears) हैं। इनका जन्म 1908 में पालो अल्टो कैलीफोर्निया में हुआ था। इनकी विशेष रुचि बालक के अधिगम की प्रक्रिया में थी। ये क्लार्क हल (Clark Hull) के विचारों से प्रभावित थे। इनके द्वारा प्रतिपादित विचारों में व्यवहारवाद तथा मनोविश्लेषणवाद, दोनों का समन्वय पाया जाता है।

**संदर्भ सूचीः–**

1. योजना, दिसम्बर 2010
2. योजना, अगस्त 2005
3. योजना, फरवरी 2002